

वंचित समाज में शैक्षिक प्रसार का मूल्यांकन

डॉ. फरहा एम. रिजवी

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
शिया पीजी कॉलेज, लखनऊ

सामाजिक आन्दोलनों के इतिहास में गांधी ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सर्वप्रथम अस्पृश्यता को जड़ से उखाड़ फेंकने का बीड़ा उठाया। महात्मा गांधी अस्पृश्यता को हिन्दुत्व के नाम पर धब्बा मानते थे। बचपन से ही उनके अन्दर यह भावना पनप चुकी थी। उन्होंने अपने आत्मकथन में वर्णन किया है कि वह ऐसे अनेकों हिन्दू रीति-रिवाजों को पसन्द नहीं करते जो भारतीय समाज में ऊँच-नीच को बढ़ावा देते हैं। गांधी जी लिखते हैं “मैं अस्पृश्यता को हिन्दुत्व के नाम पर धब्बा मानता हूँ।” यह देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ कि दलित लोग कितनी दयनीय दशा में रह रहे हैं। गांधी जी लिखते हैं- अछूत सभ्य समाज का बाहरी हिस्सा है। उनसे मनुष्य जैसा व्यवहार नहीं किया जाता। इसी आधार पर उनके साथियों द्वारा उन्हें जाति से बाहर कर धरातल में धकेल दिया जाता है। सामाजिक रूप से वे कोढ़ी हैं। आर्थिक रूप से वे गुलामों से भी बदतर हैं। धार्मिक रूप से उन्हें मन्दिरों में प्रवेश करने से मना किया जाता है। उन्हें सार्वजनिक पार्कों का इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता है, फिर भी आश्चर्य है कि वे अपने अस्तित्व का जैसे-तैसे निर्वाह करने के काबिल हैं।

आदिवासी समुदाय के अलावा अल्पसंख्यक समुदाय भी हाशियाकरण से ग्रसित हैं। अल्पसंख्यक शब्द आमतौर पर ऐसे समुदायों के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो संख्या की दृष्टि से बाकी आबादी के मुकाबले बहुत कम हैं लेकिन यह अवधारणा केवल संख्या के सवाल तक ही सीमित नहीं है। इसमें न केवल सत्ता और संसाधनों तक पहुंच के मुद्दे जुड़े हुए हैं, बल्कि इसके सामाजिक व सांस्कृतिक आयाम भी होते हैं। इस सन्दर्भ में मोतीलाल (2001) का कहना है कि भारतीय संविधान इस बात को मानता है कि बहुसंख्यक समुदाय की संस्कृति, समाज और सरकार की अभिव्यक्ति को प्रभावित कर सकती है। ऐसी सूरत में छोटा आकार घाटे की बात साबित हो सकती है और संभव है कि छोटे समुदाय हाशिये पर खिसकते चले जाएं। ऐसे में अल्पसंख्यक समुदायों को बहुसंख्यक समुदाय के सांस्कृतिक वर्चस्व की आशंका से बचाने के लिए सुरक्षात्मक प्रावधानों की जरूरत पड़ती है। ये प्रावधान उन्हें भेदभाव और नुकसान की आशंका से भी बचाते हैं।

इन समुदायों के अतिरिक्त मुसलमानों को भी हाशियाई समुदाय माना जाता है क्योंकि दूसरे समुदायों के मुकाबले उन्हें सामाजिक-आर्थिक विकास के उतने लाभ नहीं मिले हैं।

इस बात पर ध्यान देते हुए कि मुसलमान विकास के विभिन्न संकेतकों पर पिछड़े हुए हैं, सरकार ने 2005 में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया जो न्यायमूर्ति राजिन्दर सच्चर की अध्यक्षता में बनाई गई। इस समिति ने भारत में मुस्लिम समुदाय की सामाजिकता, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति का जायज़ा लिया। रिपोर्ट में इस समुदाय का विस्तार से अध्ययन किया गया है। समिति की रिपोर्ट से पता चला कि विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक संकेतकों के हिसाब से मुसलमानों की स्थिति अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति जैसे अन्य हाशियाई समुदायों से मिलती-जुलती है।

किशोरी राज (2000) का कहना है कि मुसलमानों के आर्थिक व सामाजिक हाशियाकरण के कई पहलू हैं। दूसरे अल्पसंख्यकों की तरह मुसलमानों के भी कई रीति-रिवाज़ और व्यवहार मुख्यधारा के मुकाबले काफ़ी अलग है। सब नहीं, लेकिन कुछ मुसलमानों में बुर्रकां, लंबी दाढ़ी और फ़ैज टोपी का चलन दिखाई देता है। बहुत सारे लोग सभी मुसलमानों को इन्हीं निशानियों से पहचानने की कोशिश करते हैं। इसी कारण अक्सर उन्हें अलग नज़्ार से देखा जाता है। कुछ लोग मानते हैं कि वे ‘हम बाकी लोगो’ जैसे नहीं हैं। अक्सर यही सोच उनके साथ गलत व्यवहार करने और भेदभाव का बहाना बन जाती है। किशोरी राज (2000) के अनुसार मुसलमानों के इसी सामाजिक हाशियाकरण के कारण कुछ स्थितियों में वे जिन इलाकों में पहले से रहते आए हैं, वहाँ से निकलने लगे हैं। जिससे अक्सर उनका ‘घेटोआइजेशन’ ;ळीमजीवपेंजपवदद्ध होने लगता है। कभी-कभी यही पूर्वाग्रह घृणा और हिंसा को जन्म देता है।

अतः हाशियाकरण का ऐतिहासिक प्रारूप अनुभव करने के बाद यह कहा जा सकता है कि हाशियाकरण का संबंध अभाव, पूर्वाग्रह और शक्तिहीनता के अहसास से जुड़ा है। हमारे देश में कई और भी हाशियाई समुदाय हैं, दलित भी इस तरह का एक समुदाय है। हाशियाकरण से कमजोर सामाजिक हैसियत ही नहीं पैदा होती, बल्कि शिक्षा व अन्य संसाधनों तक पहुँच भी बराबर नहीं मिल पाती। आज भी शिक्षा का स्वरूप जातिगत भेदभावों तथा विषमताओं को दूर करने के बदले विषमताएं फैला रहा है।

जैसा कि रिंतुबाला द्वारा 3 सितम्बर 2000 को दैनिक समाचार पत्र जनसत्ता में प्रकाशित लेख पूर्वग्रहों के पाठ में जातिवाद प्रभाव को स्पष्ट करने की बात दिखाई देती है। लेखिका का मानना है कि पाठ्य पुस्तकों में अनुसूचित जाति/जनजाति के किसी पात्र को शामिल नहीं किया जाता और न ही उस पर कोई दृश्य या चित्र होता है। यदि चित्र या दृश्य दे भी रखा हो तो उसका पूर्ण वर्णन नहीं दिया जाता। लेखिका का मानना है कि उच्च वर्ग का पुस्तकों के निर्माण में हाथ होने से निम्न जाति के पात्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। जैसे लेखिका का मानना है कि दूसरी कक्षा की पुस्तकों में केवल आठ चित्र अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें से 4 चित्र केवल अम्बेडकर साहब के हैं और 4 अन्य अनुसूचित जाति के हैं। अतः लेखिका का विश्वास है कि यदि हमें अनुसूचित जातियों को आगे लाना है तो सबसे पहले उनकी साक्षरता दर को बढ़ाना होगा।

धनंजय कीर ने 'डाॅ. अम्बेडकर: लाइफ एंड मिशन' किताब में अनुसूचित जाति की स्थिति के सन्दर्भ में डाॅ. अम्बेडकर का उदाहरण देते हुए बताया कि डाॅ. अम्बेडकर ने स्वयं व्यक्तिगत रूप से आरक्षण की पृष्ठभूमि में व्याप्त समस्याओं का आजीवन सामना किया था। सवर्ण समाज के तिरस्कार व उत्पीड़न से वे भलीभाँति परिचित थे कि कैसे पानी बिना प्यासा रहना पड़ता था, स्कूल के 'श्यामपट्ट' को छूना निषिद्ध था तथा दलित छात्रों के मुँह में 'कुप्पी' से पानी डाला जाता था। सैकड़ों अछूत माँ- बहनें कुएँ के पास पानी के बर्तन लेकर दिन भर खड़ी रहती थी कि कोई दयालु व्यक्ति आए और उनके खाली बर्तनों में पानी डाले। सैकड़ों अछूत महिलाएँ सुबह से शाम तक खड़ी-खड़ी थक जाती थीं, अधिकांशतः वे खाली हाथ ही लौट जाती थी और घर आकर प्यास से तड़पते हुए बच्चों की तरफ देखती और बेवस हो जाती थीं। न केवल विद्यमान संस्थाओं में चारों तरफ छुआछूत का यह अभिशाप विद्यमान था, बल्कि समाज के उच्च लोगों ने अछूतों का हर तरफ से बहिष्कार किया हुआ था।

अतः उपरोक्त अध्ययन के बाद यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि सीमांत वर्ग को स्कूली पाठ्यचर्या, आरक्षण इत्यादि में आज भी पूर्ण भागीदारी नहीं मिल पाई है। सरकार द्वारा बनाये गए कानून नीतियाँ, आयोग समाज में समानता लाने की दृष्टि से अपूर्ण है और इनका सुचारू रूप से क्रियान्वयन न हो पाने की वजह से परिस्थिति और भी गम्भीर हो रही है।

संविधान निर्माताओं ने भारत की प्रचलित सामाजिक व्यवस्था को समूल नष्ट करने के लिए मूल अधिकारों के तहत सामाजिक समानता के स्थान पर सामाजिक समता के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 14-18 में रखा था। सामाजिक समानता का अर्थ है समाज के सभी वर्ग के लोगों को बिना

किसी भेदभाव के विकास के समान अवसर प्रदान करना। सामाजिक समता का अर्थ है समाज में व्याप्त विषमताओं को खत्म करना और पिछड़े वर्गों को विशेष सुविधाएँ प्रदान करना, जिससे वे समाज के अन्य विकसित वर्गों के समकक्ष आ सकें और समाज के सभी वर्गों में एकरूपता आ सकें। आज भी सीमांत वर्ग में प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी, शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। उच्च वर्ग चाहता है ये हमेशा निम्न स्तर के व्यक्ति ही बने रहे क्योंकि अगर ये विकसित हो गये तो फिर हमारी वो हैसियत व सम्मान नहीं रह जाएगा, जो अभी तक बना हुआ है। अमत्र्यसेन के अनुसार जैसे अमीर और अमीर होता जाता है तथा गरीब और गरीब होता जाता है। वैसे ही समाज में असमानता से और असमानता बढ़ती ही चली जाती है। समाज की ये असमानताएँ पिछड़ी हुई जातियों को हमेशा पिछड़ने पर मजबूर करती हैं। भारत में जो अशिक्षा, बेरोजगारी, खराब स्वास्थ्य जैसी समस्याएँ हैं वो सब इस असमानता की वजह से ही है।

कोठारी आयोग (1964-66) ने 'समान स्कूल व्यवस्था' की सिफारिश की थी। कोठारी आयोग ने कहा कि "जब तक हिन्दुस्तान में ऐसी स्कूल प्रणाली स्थापित नहीं होगी जिसके जरिये हर बच्चे को चाहे वह किसी भी वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र या लिंग का हो, समान गुणवत्ता वाली शिक्षा दी जा सके, तब तक हिन्दुस्तान में सौहार्द और बराबरी का रिश्ता स्थापित नहीं हो पाएगा।" हम सब यह भली-भाँति जानते हैं कि यह सिफारिश सिद्धान्त बनकर रह गई व कभी व्यवहारिक रूप नहीं ले पाई। भारत में शिक्षा 'समान स्कूल प्रणाली' में प्रदान नहीं की जाती है। बल्कि शिक्षा व्यक्ति अपनी सामाजिक-आर्थिक पहचान के अनुरूप प्राप्त करता है। जैसे गरीब आदमी है तो वो मोटा चावल खाता है, अमीर आदमी है तो वो बासमती चावल खाता है, ठीक वैसे ही गरीब आदमी का बच्चा है तो वह सरकारी स्कूल में पढ़ेगा व अमीर आदमी का बच्चा है तो वो प्राइवेट स्कूल में पढ़ेगा। सरकारी स्कूल में भी कई स्तर हैं, उनमें भी बच्चे अपने सामाजिक-आर्थिक स्तर के अनुरूप प्रवेश पाते हैं, जैसे दिल्ली, नगर निगम विद्यालय, केन्द्रीय विद्यालय, सैनिक विद्यालय (इसमें थल सेना, वायु सेना, नौ-सेना तीनों के अलग-अलग)।

सरकार सबको शिक्षा प्रदान करने के संबंध में एक वक्तव्य देती है कि हम तो सबको शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं किन्तु गरीब माँ- बाप अपने बच्चों को स्कूलों में भेजते ही नहीं है। वे अपने बच्चों को स्कूलों में पढ़ाने की अपेक्षा काम करवाने में अधिक रुचि रखते हैं। प्रोब रिपोर्ट 1996 यह साबित करती है कि माँ बाप अपने बच्चों को पढ़ाने के बहुत इच्छुक है किन्तु शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों की वजह से वे अपने बच्चों का रुख शिक्षा से विमुख करके काम की तरफ लगाते हैं।

सरकार कहती है कि हम सबको सरकारी नौकरी प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करते हैं। जब सभी बच्चों की शिक्षा एक समान परिवेश में हुई ही नहीं है तो उन्हें नौकरी प्राप्त करने के एक समान अवसर कैसे मिल जायेंगे। जैसे एक बच्चा सरकारी स्कूल या गैर-सरकारी संगठन ; छणळण्वणद्ध के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहा है, वह 'काॅन्वेन्ट पब्लिक स्कूल' के बच्चे के सामने प्रतियोगिता में कैसे ठहर सकता है; क्योंकि दोनों को दी जाने वाली शिक्षा के स्तर में जमीन-आसमान का अंतर है। सरकार ने शैक्षिक ढांचे की रचना इस प्रकार से की कि इसमें पब्लिक स्कूल एवं सरकारी स्कूल दोनों के लिए एक जैसी परीक्षा प्रणाली विकसित की है। जाहिर है कि पब्लिक स्कूल के छात्रों का परीक्षा परिणाम व सरकारी स्कूल के परीक्षा परिणाम के बनिस्वत् उच्च ही आता है, क्योंकि दोनों स्कूलों के छात्रों को मिलने वाली सुविधाओं में जमीन-आसमान का अंतर है। सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले अधिकतर बच्चे पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं, सरकार की यह नीति अपने आप में एक विषमता प्रधान नीति है। इस संदर्भ में कृष्ण कुमार लिखते हैं, “असल में तो हमारी परीक्षा प्रणाली जनता को धोखा देती आ रही है क्योंकि वह अपने अन्दर मौजूद गहरे भेदभावों को छिपाती है। जिससे किसी उपेक्षित सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले एक गरीब मिल-मजदूर के बच्चे को अच्छे स्तर के सुविधा सम्पन्न पब्लिक स्कूलों के छात्रों के विरुद्ध प्रतियोगिता के दौरान अपनायी जाने वाली कथित सम्पूर्ण समानता, झूठी चमक में बखूबी छिपकर रह जाती है। लेकिन तथ्य को जानने के लिए बहुत गहरी खोज की जरूरत नहीं कि अधिकतर असफल छात्र वंचित वर्गों से आते हैं।

तपस मजूमदार समिति (1999) ने अनुमान लगाया था कि 6-14 वर्ष आयु समूह के जो आधे बच्चे स्कूल से बाहर हैं, उन्हें स्कूल में लाने के लिए कितना खर्च होगा। इस रिपोर्ट के अनुसार सभी बच्चों को स्कूल की सुविधा देने के लिए अगले 10 वर्षों में कुल मिलाकर 37 हजार करोड़ रुपये अतिरिक्त लगाने होंगे। इसका अर्थ है कि प्रतिवर्ष औसतन इस मद में जो भी खर्च हो रहा है इसके अतिरिक्त 14,000 करोड़ रुपये लगाने होंगे। हमारे जी.डी.पी. की यह राशि प्रति वर्ष मात्र 0.78 प्रतिशत यानि 1 प्रतिशत से भी कम है।

सैकिया समिति ने अपनी रिपोर्ट में सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने एवं इसे मूल अधिकार बनाने की बात कही। समिति के अनुसार बच्चों को शिक्षा प्रदान करने हेतु राज्य सरकारों को अपने सालाना बजट में 6 हजार करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी करनी चाहिए। नवीं पंचवर्षीय योजना के हिसाब से सभी प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्कूलों में आॅपेशन ब्लैकबोर्ड को लागू करवाया जाना चाहिए। इन दोनों समितियों द्वारा दी गई अनुशंसाओं/ सिफारिशों को सरकार अभी तक अमल में

नहीं लाई है। शैक्षिक व्यवस्था अपनी उसी स्थिति में कमजोर दिखाई देती है जैसी इन समितियों के गठन से पूर्व थी।

83वें संशोधन विधेयक में अनुच्छेद 21(क) में कुछ शब्द जोड़ दिये गये हैं। पुराने विधेयक ने अनुच्छेद 21(क) में 6-14 आयु समूह के बच्चों को शिक्षा का अधिकार बिना किसी शर्त के दिया था। इसी जगह नया विधेयक प्रस्तावित करता है कि शिक्षा का मूल अधिकार केवल 6-14 वर्ष के आयु समूह के बच्चों को ही मिले। इसके मायने हैं कि 0-6 वर्ष के आयु समूह में आने वाले लगभग 16 करोड़ (जनगणना के अनुसार) शिक्षा का मौलिक अधिकार खो देंगे जो उन्हें सर्वोच्च न्यायालय में उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार के मामले (1993) में दिया था।

समावेश की नीति पर बल देते हुए यह कहता है कि समावेशन की नीति को हर स्कूल और सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किए जाने की जरूरत है। स्कूलों को ऐसे केन्द्र बनाए जाएँ, जहाँ समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों की शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में सबसे ज्यादा फायदा मिले। बच्चों में समानता की भावना उत्पन्न करने तथा वंचित वर्गों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए यह स्कूल में सक्षम बनाने वाले वातावरण के पोषण की बात करता है- ‘‘स्कूलों का निष्पक्ष कक्षायी वातावरण हो, जिसमें विद्यार्थियों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार न हो और जाति, प्रजाति और अल्पसंख्यक होने के कारण उन्हें अवसरों से वंचित न रखा जाये। सार्वजनिक स्थान के रूप में स्कूल में समानता, सामाजिक विविधता व बहुलता के प्रति सम्मान का भाव होना चाहिए।’’ साथ ही यह बच्चों में लिंग जाति, धर्म एवं समुदाय की अस्मिता को लेकर आलोचनात्मक समझ बनाने की बात भी करता है। लेकिन क्या इस प्रकार की व्यवस्था सम्भव है जबकि आज भी समाज के लोग हाशिए पर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके पास खाने को ना भोजन है ना रहने को घर, तो इस प्रकार के दस्तावेजों की सार्थकता पर सदा प्रश्नचिन्ह लगा रहता है।

संदर्भ

1. कीर, धनंजय (1990); ‘डाॅ. अम्बेडकर: लाइफ एंड मिशन’, बाम्बे, पापुलर प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड।
2. किशोर राज (2000); ‘जाति का जहर’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. किशोर, राज (2000); ‘हरिजन से दलित’ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. किशोर, राज (1995); 'मानव अधिकारों का संघर्ष' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. किशोर, राज (1994); 'भारत का राजनीति संकट' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. कुमार, कृष्ण, (1993); 'राज समाज और शिक्षा', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
7. कुमार कृष्ण, (1998); 'शैक्षिक ज्ञान का वर्चस्व', (दिल्ली ग्रंथ शिल्पी)
8. सद्गोपाल, अनिल (2005); 'शिक्षा में बदलवाव का सवाल', (दिल्ली ग्रंथ शिल्पी)।
9. श्रीनिवास, एम.एन, (1987); 'आधुनिक भारत में जातिवाद', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।